International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-11-2025, Accepted: 11-12-2025, Published: 26-12-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 173-174

वैदिक साहित्य में प्रकृति–पूजा और पर्यावरण संरक्षण की दार्शनिक आधारभूमि

बेअन्त कौर[1], डॉ. सुनीता स्वामी[2]
[1] शोधार्थी, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

सारांश
वैदिक साहित्य में प्रकृति–पूजा केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि का प्रतीक है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को दिव्य सत्ता के रूप में स्वीकार कर मानव और प्रकृति के बीच सहअस्तित्व की भावना विकसित की गई। 'ऋत' की अवधारणा ब्रह्मांडीय संतुलन और नैतिक अनुशासन का आधार प्रस्तुत करती है। यज्ञ, वन–संस्कृति, औषधि–सम्मान तथा संयमित उपभोग की परंपराएँ पर्यावरण संरक्षण की स्पष्ट चेतना दर्शाती हैं। यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि वैदिक दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरण संकट के समाधान हेतु महत्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

मूल शब्दः वैदिक, साहित्य, प्रकृति, पूजा, पर्यावरण, संरक्षण, दार्शनिक, दृष्टिकोण, वेद, संस्कृति

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर प्रकृति के साथ सहअस्तित्व की चेतना में निहित है। यह चेतना किसी आकस्मिक सामाजिक व्यवस्था का परिणाम नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक दृष्टि का प्रतिफल है, जिसकी जड़ें वैदिक साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं देखा, अपितु उसे चेतन सत्ता, दिव्य अभिव्यक्ति और ब्रह्मांडीय व्यवस्था का अंग माना। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – इन पंच महाभूतों के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता और संरक्षण की भावना वैदिक साहित्य का केंद्रीय तत्त्व है। आज जब मानव सभ्यता जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, जैव–विविधता के क्षरण और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, तब वैदिक साहित्य में निहित प्रकृति–दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, प्रकृति के विविध आयामों की स्तुति, व्याख्या और संरक्षण–संबंधी भावनाओं का भंडार हैं। इन ग्रंथों में प्रकृति–पूजा केवल धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के बीच संतुलन और समन्वय की दार्शनिक आधारभूमि है। इस लेख का उद्देश्य वैदिक साहित्य में प्रकृति–पूजा की अवधारणा तथा उसके अंतर्निहित पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांतों का विश्लेषण करना है।

वैदिक विश्वदृष्टि और ब्रह्मांडीय एकात्मता

वैदिक चिंतन का मूल तत्त्व 'ऋत' की अवधारणा है। 'ऋत' ब्रह्मांडीय व्यवस्था का वह सिद्धांत है, जो समस्त सृष्टि को नियमबद्ध और संतुलित रखता है। ऋग्वेद में 'ऋत' को सत्य, धर्म और प्राकृतिक व्यवस्था का आधार कहा गया है। यह व्यवस्था केवल नैतिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि पारिस्थितिक भी है। सूर्य का उदय–अस्त, ऋतुओं का परिवर्तन, वर्षा का चक्र, नदियों का प्रवाह – ये सब 'ऋत' के अंतर्गत आते हैं।

इस दार्शनिक दृष्टि में मनुष्य प्रकृति से पृथक नहीं, बल्कि उसी का अंग है। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" (अथर्ववेद 12.1.12) मंत्र में मनुष्य स्वयं को पृथ्वी का पुत्र घोषित करता है। यह संबंध अधिकार का नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व का है। यदि पृथ्वी माता है, तो उसका संरक्षण पुत्र का कर्तव्य है। यही विचार आधुनिक पर्यावरण नैतिकता के मूल में भी है।

वैदिक साहित्य में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावना (उपनिषदों में प्रतिपादित) यह संकेत करती है कि समस्त सृष्टि में एक ही चेतना व्याप्त है। अतः किसी भी प्राकृतिक तत्त्व का अनादर, समस्त सृष्टि का अनादर है। यह समग्र दृष्टि मानव–केंद्रित विचारधारा के विपरीत, प्रकृति–केंद्रित दृष्टिकोण को पुष्ट करती है।

प्रकृति–देवताओं की स्तुति और पर्यावरणीय संवेदना

ऋग्वेद में अग्नि, इंद्र, वरुण, मरुत, उषा, आदित्य, पृथ्वी, सरस्वती आदि देवताओं की स्तुतियाँ मिलती हैं। ये देवता वस्तुतः प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। अग्नि ऊर्जा का, इंद्र वर्षा और मेघ का, वरुण जल और नैतिक व्यवस्था का, मरुत वायु का, उषा प्रातः कालीन प्रकाश का प्रतीक हैं। इनकी स्तुति केवल भौतिक लाभ की कामना के लिए नहीं, बल्कि प्राकृतिक शक्तियों के प्रति सम्मान और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है।

पृथ्वी सूक्त (अथर्ववेद 12.1) में पृथ्वी की विविध विशेषताओं, उसकी औषधियों, पर्वतों, नदियों और जीवनदायिनी शक्ति का अत्यंत भावपूर्ण वर्णन है। इसमें पृथ्वी से प्रार्थना की गई है कि वह अपने संतानों की रक्षा करे और उन्हें समृद्धि प्रदान करे। यह सूक्त पर्यावरण संरक्षण की स्पष्ट चेतना को व्यक्त करता है।

नदियों के प्रति भी वैदिक ऋषियों का गहरा सम्मान था। सरस्वती, सिंधु, गंगा आदि नदियों की स्तुतियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि जल–स्रोतों को पवित्र और जीवनदायिनी माना गया। जल को 'आपः' कहकर देवता का स्थान दिया गया। "आपो हि ष्ठा मयोभुवाः" मंत्र में जल को सुख और कल्याण का स्रोत कहा गया है। यह दृष्टिकोण जल–संरक्षण की मूल प्रेरणा है।

यज्ञ की पारिस्थितिक अवधारणा

यज्ञ वैदिक जीवन का केंद्रीय अंग था। सामान्यतः यज्ञ को केवल अग्नि में आहुति देने का कर्मकाण्ड समझ लिया जाता है, किंतु वैदिक संदर्भ में यज्ञ का व्यापक अर्थ है सामूहिक सहयोग, संतुलन और समर्पण। यज्ञ का दार्शनिक अर्थ है 'देना' और 'साझा करना'।

यज्ञ की प्रक्रिया में प्राकृतिक तत्त्वों की भागीदारी होती है अग्नि, वायु, घृत, औषधियाँ आदि। यजुर्वेद में वर्णित यज्ञीय मंत्रों में प्रकृति की शुद्धि और संतुलन की भावना व्यक्त होती है। यज्ञ के माध्यम से वातावरण की शुद्धि, सामाजिक एकता और नैतिक अनुशासन की स्थापना का उद्देश्य निहित था।

'यज्ञ' की अवधारणा को यदि व्यापक अर्थ में देखें, तो यह पारिस्थितिक चक्र का प्रतीक है। सूर्य की ऊर्जा से वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, पशु और मानव उनसे जीवन प्राप्त करते हैं, और अंततः सब पुनः प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। यह चक्र एक यज्ञ है, जिसमें प्रत्येक तत्त्व अपना योगदान देता है।

वन–संस्कृति और अरण्यक परंपरा

वैदिक काल में वन केवल संसाधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का स्थल थे। अरण्यक ग्रंथों की रचना वन–प्रदेशों में हुई। वन को 'तप' और 'ज्ञान' का केंद्र माना गया। आश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थ आश्रम का विशेष महत्व था, जिसमें व्यक्ति वन में निवास कर प्रकृति के समीप जीवन व्यतीत करता था।

वन–संस्कृति ने जैव–विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वृक्षों को देवता का स्वरूप माना गया। पीपल, वट, अशोक आदि वृक्षों की पूजा की परंपरा पर्यावरण संरक्षण का सांस्कृतिक साधन थी। यह दृष्टि वृक्षों को काटने से रोकने और उनके संवर्धन की प्रेरणा देती थी।

औषधियों और जैव–विविधता का सम्मान

अथर्ववेद में औषधियों की विस्तृत स्तुतियाँ मिलती हैं। औषधियों को 'माता' कहा गया है। यह दृष्टिकोण जैव–विविधता के प्रति सम्मान को प्रकट करता है। वनस्पतियों और जड़ी–बूटियों का संरक्षण केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था से भी जुड़ा था।

कृषि और पशुपालन वैदिक जीवन के आधार थे। गौ को 'अघ्न्या' कहा गया– अर्थात् जिसे मारना वर्जित है। यह भावना पशु–धन के संरक्षण और संतुलित उपयोग की ओर संकेत करती है।

पर्यावरणीय नैतिकता और सामाजिक अनुशासन

वैदिक साहित्य में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और संयम की भावना स्पष्ट है। संसाधनों के उपयोग में संतुलन और मितव्ययिता का निर्देश मिलता है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' (ईशावास्योपनिषद्) का संदेश है कि त्याग की भावना से उपभोग करो। यह उपभोग–प्रधान आधुनिक संस्कृति के विपरीत संयम–प्रधान जीवन–पद्धति को प्रेरित करता है।

सामूहिक प्रार्थनाओं में "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का भाव केवल मानव समाज तक सीमित नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के कल्याण की कामना है। शांति मंत्रों में 'द्योः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः' कहकर समस्त प्रकृति के लिए शांति की प्रार्थना की गई है। यह वैश्विक पर्यावरणीय संतुलन की आकांक्षा है।

आधुनिक संदर्भ में वैदिक पर्यावरण–दृष्टि की प्रासंगिकता

आज की पर्यावरणीय समस्याएँ मानव की असीमित भोग–वृत्ति और प्रकृति पर आधिपत्य की मानसिकता का परिणाम हैं। वैदिक साहित्य इस मानसिकता के स्थान पर सहअस्तित्व और संतुलन की शिक्षा देता है। वैदिक दृष्टि में प्रकृति शोषण की वस्तु नहीं, बल्कि सहचर है।

सतत विकास की अवधारणा, जिसमें वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों का संरक्षण किया जाता है, वैदिक दर्शन के अनुरूप है। 'ऋत' और 'धर्म' की अवधारणाएँ प्राकृतिक संतुलन और नैतिक उत्तरदायित्व को जोड़ती हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में प्रकृति–पूजा केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण की एक सुदृढ़ दार्शनिक आधारभूमि है। यह आधारभूमि समग्रता, संतुलन, संयम और सहअस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित है। यदि आधुनिक समाज इन सिद्धांतों को आत्मसात् करे, तो पर्यावरण संकट का समाधान संभव है।

निष्कर्ष

वैदिक साहित्य में प्रकृति के प्रति जो श्रद्धा, कृतज्ञता और संरक्षण की भावना व्यक्त हुई है, वह मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। पृथ्वी को माता, जल को देवता, वायु को जीवन–शक्ति और अग्नि को ऊर्जा का प्रतीक मानकर वैदिक ऋषियों ने पर्यावरणीय संतुलन की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की, जो आज भी प्रासंगिक है।

इस प्रकार, वैदिक प्रकृति–दृष्टि न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा है, बल्कि एक समग्र पर्यावरणीय दर्शन है, जो मानव और प्रकृति के बीच संतुलन, सामंजस्य और सहअस्तित्व की शिक्षा देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अरविन्द, श्री. (1998). वेद का रहस्य. श्री अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग।
2. भट्टाचार्जी, सुकुमारी. (1984). भारतीय देवपरंपराः वेदों से पुराणों तक एक तुलनात्मक अध्ययन. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. गोंडा, जान. (1975). वैदिक साहित्य (संहिताएँ एवं ब्राह्मण ग्रंथ). ओट्टो हैरासोविट्ज।
4. जैमिसन, स्टेफनी डब्ल्यू., एवं ब्रेरेटॉन, जोएल पी. (2014). ऋग्वेदः भारत की प्राचीनतम धार्मिक काव्यधारा. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1994). प्रधान उपनिषद. हार्पर कॉलिन्स।
6. शर्मा, रामशरण. (2005). भारत का प्राचीन अतीत. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. सिंह, एन. के. (2003). प्राचीन भारत में पर्यावरण नैतिकता. डी.के. प्रिंटवर्ल्ड।
8. तिलक, बाल गंगाधर. (2008). वेदों में आर्कटिक निवास. पेंगुइन बुक्स।